**Sanskritik aur Samajik Anusandhan**
**www.shodhjournal.com**
**ISSN: 2582-5852**
**Received: 15-01-2023, Accepted: 01-02-2023, Published: 17-02-2023**
**Volume 4, Issue 1, 2023, Page No. 1-2**

# हिन्दी कथा–साहित्य में स्त्रियों का शोषण और नारी मुक्ति–संघर्ष

**डॉ. कोंडा चन्द्रा**
सहायक आचार्य, एस.टी.एस.एन. सरकारी स्नातक कालेज, कदिरि, श्री सत्य साई जिला, आंध्र प्रदेश, भारत

**सारांश**
आधुनिक शिक्षा नारी के लिए वरप्रदाता बनकर आई। भारतीय नारी की स्थिति में अनेक परिवर्तन हुए जो उसके विकास और प्रगति की दृष्टि से संतोषप्रद है। स्त्री को घर की चारदीवारी से बाहर कदम रखने का अवसर दिया ।भारतीय स्त्री की सोचने–समझने के दृष्टकोण में परिवर्तन आया, अनेक कथा साहित्य में प्रकट होता है। खासकर स्त्री लेखिकाओं में।

**मूल शब्दः** आंदोलन, परिवर्तन, दृष्टि कोण, संघर्ष

आज हिंदी कथासाहित्य में स्त्रीविमर्श सशक्त विषयवस्तु बना हुआ है। पितृसत्तात्मक समाज ने उसे स्त्री बनाकर परंपराओं के आढ में उसका शोषण करते रहे। हिंदी कथा–साहित्य में कथाकारों ने नारी की इस मूक पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर उद्घाटन किया। हिंदी कथा–साहित्य में नारी के शोषित स्वरूप एवं दास्थरूप नारी की छवि को तोड़ने की अकुलाहट को प्रकट किया है।समाज के सभी क्षेत्रों में पुरुष की सहयोगी रही नारी को भारतीय समाज ने उचित स्थान नहीं दिया। अतः नारी की उपेक्षा, शोषण एवं नारीमुक्त आंदोलन पर हिंदी कथा–साहित्य में साहित्यकारों ने अपनी विश्लेषणात्मक दृष्टि प्रकट की है। भारतीय समाज में स्त्री को प्राचीनकाल से ही गृहिणी पद से सुशोभित किया गया, अतः उसके बाहर आने की समस्या ही नहीं थी।बचपन में वह पिता के संरक्षण में रहती थी, विवाहित होने पर पति का कठोर नियंत्रण रहता था और वृद्धावस्था में बच्चों की इच्छानुसार चलना पड़ता था। इस तरह माना जाता है कि पुरुष को केन्द्र बनाकर नारी का जीवन चक्र चलता रहता है। स्त्री के जीवन–चक्र की धुरी पुरुष ही है। समाज और परिवार की मान्यताओं के अनुसार ही स्त्री का जीवन चलता है और हम जानते हैं कि ये दोनों ही पुरुष–प्रधान संस्थाएँ हैं। स्वभाव से संवेदनशील होनेके कारण स्त्री पारिवारिक और सामाजिक मान्यताओं और को संपूर्ण रूप ग्रहण करती है। उनका निर्वहण भी करती है। स्त्री अपने इस निष्ठापूण निर्वहण के कारण पुरूष की धूर्तता, धोखा–धडियों एवं रोब–दाब को झेलना पड़ता है। वह जैसा चाहती है, उस तरह से कुछ होता नहीं है। उसे अपने को पुरूष–प्रधान व्यवस्था के अनुरूप ढालना पडता है। उच्च आदर्शो के बावजूद वह समाज में गौरवपूर्ण स्थान बना नहीं पायी।

शिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार के फलस्वरूप आज स्त्री अपने अधिकारों के प्रति सचेष्ट है। उसमें एक नवीन चेतना का सफुरण हुआ। वर्तमान काल में आर्थिक व्यवस्था ने उसे और भी प्रोत्साहन दिया कि वह घर की सीमाओं को पार करे। परिणामस्वरूप स्त्री को नौकरी करना आवश्यक हो गया और उसने अपने अधिकारों की मांग की। स्त्री किसी की कृपा पर आश्रित न रहकर स्वावलंबी बनने लगी। पारिवारिक और सामाजिक फैसले केवल पुरुष का ही था। लेकिन जब से स्त्री शिक्षित हुई, चेतना आई और स्वावलंबन हुई, तब से पुरूष की जड़ें हिलने लगीं है। आज स्त्री अपनी पहचान के लिए सारे बंधन तोड़ रही है। वह अपनी स्व–अस्तितव की लड़ाई लड़ने में रत है। युगों से पीड़ित स्त्री, पुरुष की दासी न बनकर अपने अधिकारों की मांग की। स्त्री को पुरुष के बराबर का पद मिलना चाहिए। समाचार–पत्रों, अधिवशनो और पुस्तकों में तो यह पद मिलता रहता है। परन्तु कानून और देश की आर्थिक योजनाओं में स्थिति नहीं के बराबर है। स्त्रियाँ आज समाज में स्त्रियों के उद्धार का आंदोलन कर रही है और अपनी स्थिति को दृढ बनाने में तुली हुई है। आज की नारी का आंदोलन कहता है कि–– नारी को पद चाहिए जग में पुरुष समान,
वह ले कर ही रहेगी, कृ बोल रहे बलिदान।

## स्त्रियों की उपेक्षा एवं शोषण

हर तरह की निष्ठा और सेवा भाव के बावजूद भारतीय स्त्री समाज में महत्वपूर्ण व्यक्ति नहीं मानी जाती है। हर तरह की गैर जिम्मेदारी और अदूरदर्शीता के बावजूद पुरुष विशेष महत्व का बना हुआ है। निर्णय का बिन्दु पुरुष के यहां ही बनता है। यह स्त्री की सबसे बड़ी विडंबना है। स्त्री पहचान एवं प्रतिष्ठा के लिए छटपटाती रही। मगर समाज और परिवार दोनों स्तरों पर स्त्री की उपेक्षा रही और शोषण होते आया है। हिन्दी कथा–साहित्य में स्त्री की इस उपेक्षित, शोषित स्थितियों का विश्लेषण कर, स्त्री के प्रति पुरुष समाज के वस्तुवादी एवं भोगवादी दृष्टिकोण के प्रतिपादनो का उद्घाटन किया है। मन्नूभण्डारी की 'अकेली' की सोमू बुआ बड़ी सहृदयता के साथ परिवार को सम्हालती है और पति के तीर्थयात्रा पर जाने पर अडोस–पडोस की महिलाओं के काम–काज में हाथ बटाती है। किसी के घर में मुंडन हो, जनेऊ हो, शादी हो या गमी बुआ पहुंच जाती है, मानो दूसरों के घर में नहीं, अपने ही घर में काम कर रही हो। लेकिन उसको न परिवार से सहानुभूति मिलती है, न समाज की ओर से। रिश्तेदारों की ओर से शादी का निमंत्रण तक उसे मिलता नहीं। इस उपेक्षा के कारण बुआ समाज के प्रति ही नहीं, जीवन के प्रति भी उदास है, और जीवन में नितांत अकेली रह जाती है। बुआ के इस अकेलेपन का उपचार केवल थोड़ी दृ सी हमदर्दी है। संवेदनाओं की उपेक्षा से स्त्री टूट जाती है। वह संवेदनाशून्य समाज में जी नहीं पाती है।

मार्कण्डेय से लिखित "वासवी की मां" की मृणालिनी पुरुष की भोगवादी प्रवृत्तिका शिकार होती है। पति रतनलाल शराबी और वासनालोलुप है। फिर भी मृणालिनी उसके प्रतिनिष्ठा रखती है। व्यापार के दौरान पति घर से बाहर रहता है। उसकी बेटी वासवी पर रतनलाल के मित्र की न जर पडती है। इसको जानते हुए भी अपने फायदेकारे दृष्टि में रखकर रतनलाल चुप रहता है। रतनलाल के मित्र की लपंटता का शिकार खुद मृणालिनी होती है। इस तरह रतनलाल और उसका मित्र दोनों मृणालिनी का उपभोग करते चलते हैं। यह एक प्रकार से पुरूष द्वारा स्त्री की उपेक्षा के साथ–साथ उसका शोषण भी प्रकट होता है। स्त्री के

प्रति पुरूष इस उपेक्षा एवं शोषण प्रवृत्ति को हिंदी कथा–साहित्य में व्यक्त किया गया है। शैलेश मटियानी की "लाटी" कहानी की लाटी को लूटने का हर प्रकार का जाल समाज में बिछाया जाता है। जवान ही नहीं, बूढों तक की नजरें उसके देह पर लगी हुई हैं। बुक–सेलर सोचता है "उत्तम लाटी डिगरवाकाने के साथ नहीं, बल्कि उसके साथ ज्यादा अच्छी लग सकती है।"

डॉ शीला रजवार जी का कहना है कि इन सबके अंदर वह पुरुष छिपा हुआ है जो नारी को केवल भोग की वस्तु समझता है और उसका शोषण करता है। पुरूष में छिपी इस शोषण प्रवृत्ति के कारण स्त्री को जीवन में संकट पूण स्तिथियों से जूझना पड़ता है। इस तरह हम देखते हैं कि हिन्दी कहानी साहित्यकारों ने समाज की बुरी परिणतियों का प्रतिपादन कर, यह बोध जगाया है कि स्त्री के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाया जाए। और उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकास की संभावनाएं समाज में खुल पडनी चाहिए।

## नारी मुक्ति संघर्ष

नारी मुक्त संघर्ष आज के युग में तीव्र रूप में है। हिन्दी साहित्यकारों ने भी अपने कथासाहित्य के द्वारा इस संघर्ष का विश्लेषण करते हुए स्त्री संघर्ष का प्रोत्साहन भी किया है। घर–परिवार तक सीमित रहती आयी नारी, आजकल अपनी शक्ति प्रतिभाओं का सदुपयोग, नौकरी के दौरान करने लगी है। शिक्षा और नौकरी के द्वारा सशक्त होने के प्रयास में है। आज नारी परिवार को अतिरिक्त आर्थिक सहारा प्रदान करने लगी है। परिवार में उसका अलग महत्व बनने लगा है। आज स्त्री शिक्षित होकर जागरूक है। आर्थिक रूप से स्वावलंबन है। उसने परंपराओं का कठोर विरोध किया और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने लगी। आज नारी समाज के बंधनों से ऊपर उठकर सोचने लगी है। इस प्रकार वह अपने यथार्थ को ढूंढने का प्रयास कर रही है। आज की आधुनिक नारी श्रमजीवी होकर घर और बाहर (नौकरी से) दोनों कार्य सफलतापूर्वक कर रही है। इस कारण आधुनिक नारी झुकना नहीं चाहती वह अपने आत्म सम्मान की रक्षा चाहती है। परंपरागत मान्यताएं एवं नैतिक आदर्श अब उसके लिए उतने महत्वपूर्ण नहीं रह गए हैं। आज ग्रामीण नारी भी किसी न किसी रूप में इस नवीन मानसिकता से अवश्य प्रभावित है। ग्रामीण नारी भी आज अपने अधिकारों के प्रति जागरूक दिखाई देने लगी है। वह आज परंपरागत पुरूष दृ आधिपत्य को नकार रही है। स्पष्ट है कि ग्रामीण नारी भी आज मात्र तस्वी रनहीं रह गई है, जिसे जहां चाहे 'फिट' करके रख दिया जाये।

नारी आज नौकरी के माध्यम से आर्थिक स्वावलंबन प्राप्त कर और अपनी शक्ति प्रतिभाओं के सदुपयोग की सुविधा के बावजूद समाज में कुरीतियों, रूढ धारणाओं एवं संकीर्णताओं के कारण असंतुष्ट है। इसी तनाव संघर्ष को उषाप्रियंवदा के "छुट्टी का दिन" कहानी में दर्शाया गया है। "छुट्टीकेदिन" की मिससहगल नौकरी और स्वावलंबन के बावजूद व्यस्तता के कारण, घड़ी भर के लिए भी फुर्सत नहीं पाती है। वह टूटन तथा थकान का अनुभव करती है कृ"अपने जिंदगी के पैटर्न पर, उसके खोखलेपन और सारहीनता पर"। इसी तरह चित्रामुदगल की "अपनी वापसी", मृदुला गरग "राख", मन्नूभण्डारी की "बंददराजोंकासाथ" और "नई नौकरी" आदि जैसी कई कहानियों में नारी सामाजिक परिवेश की जटिलताओं के कारण, नौकरी के रूप में प्राप्त आर्थिक स्वावलंबन के बावजूद जीवन में व्यर्थता का तीखा बोध व्यक्त करती है। घर और दफ्तर या काम के अन्य जगहों पर उसे अनेक प्रकार के मानसिक तनाव सहने पडते हैं। नौकरी के लिए आते–जाते समय नारी को तरह–तरह की यातनाओं का सहन करना पड़ता है। अपनी नौकरी के पदोन्नति की संभावनाओं को बनाए रखने के लिए नारी को सामाजिक संबंधों को भी निभाना होता है। मालिक, अधीनस्थ और सहकर्मी सभी उसका शोषण करने का प्रयत्न करते हैं। आज भी उसे नारी ही समझा जा रहा है, एक व्यक्ति नहीं।

## निष्कर्ष

आज नारी अपमानित जीवन व्यतीत न कर, अपने पैरों पर खड़ी होकर अपने स्वाभिमान की रक्षा करने की शक्ति रखती है। महादेवी वर्माजी मानतीं है कि यदि नारी को बढना है तो उसे अपना अस्तित्व पहचानना होगा, स्वीकारना होगा। हिन्दी कथासाहित्य में स्त्री सशक्तिकरण पर विशेष बल दिया गया है। हिन्दी कथासाहित्य में कथाकारों ने यह उद्घाटन सफलतापूर्वक करने का प्रयत्न किया है कि नारी जीवन के सहज विकास के लिए आर्थिक औननतय, जीवन की सुविधाओं की उपलब्धि, सुरक्षा की व्यवस्था प्रदान करना आवश्यक है। भविष्य के निर्माण के लिए वर्तमान के तमाम प्रतिरोधों के बावजूद वह निरंतर गतिशील है। निष्कर्ष में यह आशा है कि स्त्री और पुरुष दोनों की सहनता और आपस की समझ (एक दूसरे के प्रति) एवं वैचारिक परिवर्तन से स्त्री का पूर्ण रूप से विकास हो सकता है। फिर भी स्त्री को सतर्कता से जीवन में अपने कदम बढाते चले जाना है।

*****

## संदर्भ सूची

1. उषा प्रियंवदा – वापसी
2. मृदुला गर्ग – राख
3. मन्नू भण्डारी – नई नौकरी
4. मन्नू भण्डारी – अकेली

**International Journal of Research in Hindi**
**www.hindijournal.in**
**ISSN: 2582-3493**
**Received: 28-11-2022, Accepted: 14-12-2022, Published: 30-12-2022**
**Volume 4, Issue 2, 2022, Page No. 22-23**

# नवचेतन और नवजागरण के कवि 'रामधारी सिंह दिनकर'

**डॉ. श्रीमती. के. चन्द्रा**
सहायक आचार्य, एस टी एस एन सरकारी स्नातक महाविद्यालय, कदिरि, श्री सत्य साई जिला, आंध्र प्रदेश, भारत

**सारांश**
प्रगतिवादी कवियों में दिनकर विशेष महत्व रखते है। प्राचीनतम एवं नवीनतम का भव्य और क्रांतिकारी समन्वय आप की रचनाओं में हुआ। कल्पनाशीलता और सौंदर्यप्रेम से अधिक महत्व आप यथार्थ और संगर्ष को देते है। छायावाद से प्रगतिवाद की ओर एवं प्रगतिवाद से राष्ट्रवाद की ओर आप अग्रसर रहे । आप की भाषा ओजपूर्ण एवं शक्तिमय है। दिनकर जी व्यक्ति की चेतना के व्यापकत्व की विविध प्रतीकों में करते है।

**मूल शब्दः** कलपनशीलता, ओजपूर्ण, राष्ट्रवाद, क्रांतिकारी

## प्रस्तावना
रामधारी सिंह दिनकर जी राष्ट्रीय भावनाओं के कवि हैं। दिनकर जी का नाम प्रगतिवादी विचारक कवियों में लिया जाता है। उन्होने देश की राजनैतिक व सामाजिक परिस्थतियों पर लेखनी चलाई। इनका विद्रोही स्वर ललकार व चुनौती के रूप में प्रस्फूटित होकर देश पर बलिदान होने की प्रेरणा देते हैं। इन्होंने समाज की अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक असमानता के प्रति रोष प्रकट किया जिस कारण वे प्रगतिवादी रचनाएँ कहलायीं। इन्होंने शोषण, उत्पीड़न, वर्ग विषमता की निर्भीकता से निंदा की। दिनकरजी ने श्रमसाध्य जीवन जिया और उनका साहित्य साधन भी अपूर्व था। वे प्रेम के पुजारी एवं सौन्दर्य के उपासक थे। दिनकरजी की राष्ट्रीयता चेतना व व्यापकता उनकी सांस्कृतिक दृष्टि, उनका ओजपूर्ण वाणी एवं काव्यागत तत्वों पर बल, उनका सात्विक जीवन मूल्य उन्हें पारंपरिक रीति से जोड़े रखा है। अतः यह कहा जा सकता है कि दिनकरजी ने हमारे क्रांतिकारी–युग कविता का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व किया। क्रांतिवादीवादियों की सच्ची तस्वीर है दिनकर का काव्य दिनकर जी बीसवीं सदी के ओजस्वी व तेजस्वी कवि थे। अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण 'रामधारी सिंह दिनकर जी' अत्यन्त लोकप्रिय हुए। उन्हें भारतीय संस्कृति एवं इतिहास से अधिक लगाव था। राष्ट्रीय धरातल पर स्वतन्त्रता की भावना का स्फुरण करने वाले कवियों में 'रामधारी सिंह दिनकर जी' का अपना विशिष्ट स्थान है।

## रामधारी सिंह दिनकर की रचनाएँ
काव्य–रेणुका, हुँकार, रसवन्ती, कलिंग विजय, बापू, नीम के पत्ते, कुरूक्षेत्र, नील कुसुम, उर्वशी। गद्य–मिट्टी की ओर, अर्द्ध–नारीश्वर, संस्कृति के चार अध्याय।
दिनकर जी के काव्य स्वभाव में प्रकृति के प्रति एक अबोध आकर्षण है। वे समस्त प्राकृतिक व्यापारों में एक आत्मीयता का अनुभव करते हैं। इसलिए जहाँ भी उन्होंने प्रकृति वर्णन किया है वह मार्मिक और सजीव है। उसके यथार्थ वर्णन के कारण उसमें गीतात्मकता की अपेक्षा कथात्मकता अधिक है। दिनकर जी की काव्य भाषा विशुद्ध खड़ीबोली हैं। तत्सम शब्दों का प्रयोग बड़ी सफलता के साथ हुआ है। शब्द योजना पुष्ट और भावानुकूल है। भावों की शिथिलता भाषा में ही मिलती। उनकी भाषा शैली पूर्णरूप से विचारों और भावों की अभिव्यक्ति करने में समर्थ है। प्रत्येक शब्द विचार और भावों का वाहक बन गया है। दिनकर जी के काव्य में कहीं भी क्लिष्ट शब्द योजना नहीं मिलेगी। शब्दों का तोड़ मरोड़ और व्याकरण की अशुद्धियाँ नहीं मिलतीं। शाब्दिक चमत्कार तथा साहित्य प्रदर्शन के चक्कर में दिनकर जी कहीं नहीं पड़े। लाक्षणिता तथा व्यंजक शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने बहुत कम किया है। इसलिए इनकी शैली अत्यन्त परिमार्जित और प्रौढ़ है। सरलता और सुबोधता ही भाषा की अपनी सौन्दर्य विशेषता है। दिनकर जी की छन्द–योजना में नवीनता है तथा अलंकारों के प्रयोग में भी स्वाभाविकता है। उनकी समस्त रचनाओं में भाव और भाषा का सामंजस्य मिलता है। रामधारी सिंह दिनकर का नाम प्रगतिवादी विचारक कवियों में लिया जाता है। इन्होने अपने काव्यों में राष्ट्रियता,भारतीय संस्कृति,युद्ध व शांति किसानों की दयनीय दशा उच्च वर्ग का शोषण एवं जीवन के अनेकों क्षेत्रों जैसे सभी विषयों का सजीव चित्रण किया है। कवि ने 'परशुराम का उपदेश' कविता द्वारा देशवासियों में ओज और वीरता का भाव भरा है। अन्याय और अत्याचार के प्रति आवाज उठाना मानव का धर्म है और उसको सहना कायरों का काम है। मानव को प्रकृति से अनेक शक्तियाँ प्राप्त होतीं है। प्रत्येक भारतवासी अपनी शक्ति को पहचाने और एक जुट होकर शत्रु से लड़े। इसलिए कवि देशवासियों से कहता है–'बाहों की विभा सँभालो।' इस कविता में प्रतिकों, अलंकारों, और लाक्षणिक प्रयोगों से दिनकर ने काव्य सौंदर्य बखूबी उभारा है।

"लाखों क्रौंच कराह रहे हैं,
जाग, आदि कवि की कल्याणी?
फूट–फूट तू कवि–कंठों से,
बन व्यापक निज युग की वाणी।"

कविता अपने युग की वाणी बनती है। वह अपने समय के हर वर्ग एवं शोषितों की आवाज बनती है। समाज में व्याप्त अंधविश्वास, आडंबर, पाखंड को खत्म कर एक स्वस्थ व जागृत समाज निर्माण में योगदान दें। और राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर अपनी कविता के जरिये जीवन भर यही करते रहे। दिनकर के रचनाओं में उनके विचार और सोचों को दर्शाती है। दरअसल, आधुनिक युग में हिन्दी काव्य में पौरुष का प्रतीक और राष्ट्र की आत्मा का गौरव गायक जिस कवि को माना जाता है, उसी का नाम रामधारी सिंह 'दिनकर' है। दिनकर यशस्वी भारतीय परम्परा के अनमोल धरोहर हैं, जिन्होंने अपनी कालजयी रचनाओं के जरिए देश निर्माण और स्वतंत्रता संघर्ष में स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर दिया था। 'कलम आज उनकी जय बोल' जैसी प्रेरणादायक कविता और उर्वशी जैसे काव्य के प्रणेता रामधारी सिंह दिनकर ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में अनवरत लेखन किया, लेकिन उनकी विशिष्ट पहचान कविता के क्षेत्र में ही बनी। उन्होंने कविता में पदार्पण भले ही छायावाद और श्रृंगार रस से प्रभावित होकर किया हो, लेकिन समय के साथ–साथ उनकी कविता निरंतर राष्ट्रीयता और स्वातंत्र्य प्रेम का पर्याय बनती चलीई।
दिनकर ने अपनी इस राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय प्रेम को स्वीकार्य करते हुए भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार समारोह के अवसर पर कहा था कि "जिस तरह जवानी भर मैं रवीन्द्र और इक़बाल के बीच झटके खाते रहा, उसी तरह जीवन भर मैं गांधी और मार्क्स बीच भी झटके खाता रहा हूँ। इसीलिए उजले को लाल से गुणा करने पर जो रंग बनता है वही रंग मेरी कविता का है और मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के भी भावी व्यक्तित्व का रंग यही होगा।" उनकी रचनाओं में स्वदेश को युवा पीढ़ी भी अपनी कुर्बानी से मुक्त करवा सकती है।कुछ ऐसी ही भावना इन पँक्तियों में दिखाई देती है-

"नए सुरों थिंजनी बजा रही जवानियाँ
लहू में तैर–तैर के नहा रही जवानियाँ"

दिनकर स्वच्छंदतावाद के कवि कहे जाते हैं और बंधनों, रूढ़ियों को तोड़ना उनकी कविताओं की विशेषता है। लेकिन, व्यक्ति स्वातंत्र्य उनके चिंतन में नहीं दिखाई देता। कवि की स्वच्छंदता की भावना और चेतना अद्‌भुत कल्पना प्रवण,अव्यावहारिक तथा मिथकीय बिम्बों, प्रतीकों,ऐतिहासिक व्यक्तित्वों के माध्यम से व्यक्त होती हैं। दिनकर की काव्य चेतना में विविधता और विषय वस्तु की दृष्टि से बहुलता दिखाई देती है।उसमें देशभक्ति से परिपूर्ण राष्ट्रीय चेतना है और विषमता को मिटाकर सामाजिक समानता स्थापित करने की भावना है। ईश्वर को चुनौती देने वाले वाला कवि जब भीष्म जैसे महारथी को केंद्र में रखकर रचे काव्य "कुरुक्षेत्र" में पूछता है–

"धर्म का दीपक, दया का दीप
कब जलेगा, कब जलेगा

विश्व में भगवान" तो कवि की अशक्तता और अधीरता का बोध होता है।
दिनकर की पँक्तियों में धरती के प्रति आकर्षण दिखता है, स्वर्ग के प्रति नहीं। दिनकर जी वस्तुओं पर कम, अपने मन पर पड़े प्रभाव को कविता के रूप में अदम्य भाषा शैली में बहुत प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत करते हैं–

"व्योम कुंजो की परी अभिकल्प ने
भूमि को निज स्वर्ग पर ललचा नहीं
पा न सकती मृत्ति उड़कर स्वप्न को
युक्ति हो तो आ बसा अलका यहीं" ('रेणुका')

छात्र जीवन से ही संघर्षों और चुनौतियों से जूझते हुए दिनकर ने बचपन से जवानी तक के सफ़र में अनेक उतार–चढ़ाव देखे। इस संघर्षों ने दिनकर के विचारों और सोच को एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान किया। इस परिवेश का परिणाम ही था कि जुझारूपन उनके व्यक्तित्व की एक प्रमुख प्रवृत्ति बन गया। हालांकि, तमाम उतार–चढ़ाव के बावजूद दिनकर की पैनी नजर अपने युग की हर छोटी–बड़ी घटनाओं पर केंद्रित रही। अपने युग की हर सांस को वे पहचानते थे और इसका विस्फोट उनकी कविताओं और रचनाओं में खूब देखने को मिलता है। तभी तो दिनकर यह ललकारते हुए दिखते हैं कि

"सुनुँ क्या सिंधु मैं गर्जन तुम्हारा, स्वयं युग–धर्म का हुंकार हूँ मैं
कठिन निर्घोष हूँ भीषण अशनि का, प्रलय गांडीव का टंकार हूँ मैं।"

हिंदी काव्य जगत में क्रांति, ओज और प्रेम के सृजक के रूप में उनका योगदान अविस्मरणीय है और उनकी काव्यगत विशेषताएँ अद्वितीय हैं। दिनकर अपने युग के प्रतिनिधि कवि और भारतीय जनजीवन के निर्भीक रचनाकार के रूप में हमेशा हिंदी साहित्य के जगत में मूर्धन्य रहेंगे।

**संदर्भ सूची**

1. दिनकर – संचयिता, 34
2. दिनकर – रेणुका, 86
3. वही – 43, 45
4. दिनकर – रेती के फूल,7

**International Journal of Research in Hindi**
**www.hindijournal.in**
**ISSN: 2582-3493**
**Received: 28-08-2022, Accepted: 13-09-2022, Published: 30-09-2022**
**Volume 4, Issue 2, 2022, Page No. 24-26**

# नारीवादः स्त्री शक्ति

**डॉ. कोंडा चन्द्रा**
सहायक आचार्य, एस॰टी॰एस॰एन॰ सरकारी स्नातक कालेज, कदिरि, श्री सत्य साई जिला, आंध्र प्रदेश, भारत

**सारांश**
नारीवाद एक ऐसा सिद्धांत या विचारधारा है जो समाज में महिला एवं पुरुष को समान अधिकार दिलाने की वकालत करता है। इस सिद्धांत के अनुसार महिला व पुरुष के बीच समाज द्वारा किसी भी प्रकार का भेदभाव नही किया जाना चाहिए। प्राकृतिक व लैंगिक अंतर के अलावा कोई भी ऐसा अंतर जो पुरुष और महिला में किया जाता है उसका नारीवाद डटकर विरोध करता है। नारीवाद के कारण आज नारी शिक्षित होकर जागरूक है और आर्थिक रूप से भी स्वावलंबन है। परंपरागत मान्यताएँ एवं नैतिक आदर्श अब नारी के लिए उतने महत्वपूर्ण नहीं रह गए है।

**मूल शब्दः** स्वावलंबन, समानता, उत्पीड़न, सिद्धान्त, वाद

## प्रस्तावना
नारीवाद नारी के सशक्तीकरण का शस्त्र है। नारीवाद, सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों तथा विचारधाराओं की एक श्रेणी है, जो राजनीतिक, आर्थिक,व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से लैंगिक समानता को परिभाषित करने और प्राप्त करने के लक्ष्य में प्रकट किया है। नारीवाद की यह धारणा है कि समाज पुरूष–दृष्टिकोण को ही महत्व देता आया है। इस पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं के साथ भेदभाव और अन्याय होता आया है। अतः नारीवाद का लक्ष्य पुरुषों के समान शैक्षिक, वृत्तिक और पारस्परिक अवसर एवं परिणाम स्थापित करना है जो पुरुषों के समान हो। नारीवादी सिद्धांत का लक्ष्य लैंगिक असमानता को समझना है। अत; नारीवादी सिद्धांतों का उद्देश्य लैंगिक असमानता की प्रकृति एवं कारणो समझना है और इनके फलस्वरूप होने वाले लेएंगिक भेदभाव के परिणामों की व्याख्या करना है। नारीवादी संबंधी आदर्शों का मूल कथ्य यही होता है कि कानूनी अधिकारों का आधार लिंग न बने।

आधुनिक नारीवादी चिन्तन का प्रारम्भ 18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से माना जाता है। 19वीं शताब्दी से लेकर अब तक के वर्षों में नारीवादी गतिविधियों के अनेक रूप प्रकट हुए हैं। इसको विद्वानों ने 'नारीवाद की लहरों' के नाम से सम्बोधित किया है। नारीवाद की पहली लहर का समय 19वीं शताब्दी के मध्य से लेकर 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों तक माना जाता है जबकि दूसरी लहर जिसे उग्र महिलावाद के नाम से जाना जाता है का समय 60 के दशक के अन्तिम वर्षों में माना जाता है। साठ के दशक में उपजे नारीवाद का मुख्य उद्देश्य यह प्रदर्शित करता था कि सभी महिलायें एक ही प्रकार के शोषण का शिकार होती है परन्तु वर्तमान नारीवाद पुरुष प्रधान समाज में नारी की भिन्न–भिन्न स्थिति की चर्चा तो करता ही है, साथ ही महिला के आपसी सम्बन्धी की भी विवेचना करता है।

समकालीन समाज में जेंडर पर आधारित विभेद किस तरह पूरे जीवन की संरचना करते है। नारीवाद की यह धारणा है कि समाज, पुरूष–दृष्टिकोण को महत्व देता है और इस पितृसत्तात्मक समाज में महिलाओं के साथ भेदभाव और अन्याय होता रहा है। इसका लक्ष्य महिलाओं के लिए पुरुषों के समान शैक्षिक, वृत्तिक और पारस्परिक अवसर और परिणाम स्थापित करना है जो पुरुषों के समान हो। यह पितृसत्ता द्वारा स्त्रियों के ऊपर प्रभुत्व की प्रणाली के प्रति अपने विरोध के मसले पर एकजुट है। नारीवादी सिद्धांत, सैद्धांतिक या दार्शनिक क्षेत्रों में नारीवाद का विस्तार है। यह समाज की संरचना को बिना बदले राजनीतिक और कानूनी सुधार के माध्यम से पुरुषों और महिलाओं की व्यक्तिवादी समानता की तलाश करता है।

नारीवाद का तर्क है कि महिलाओं के उत्पीड़न का मूल कारण पूंजीवाद है, और घरेलू जीवन और रोजगार में महिलाओं के खिलाफ भेदभाव पूंजीवादी विचारधाराओं का ही परिणाम है। अपने अधिकांश इतिहास के दौरान, पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका की मध्यम वर्ग की श्वेत महिलाओं द्वारा नारीवादी आंदोलनों और सैद्धांतिक विकास का नेतृत्व किया गया था। हालाँकि अन्य जातियों की महिलाओं ने वैकल्पिक नारीवाद का प्रस्ताव रखा है। 1960 के दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में नागरिक अधिकारों के आंदोलन और अफ्रीका, कैरिबियन, लैटिन अमेरिका के कुछ हिस्सों और दक्षिण पूर्व एशिया में यूरोपीय उपनिवेशवाद के पतन के साथ इस प्रवृत्ति में तेजी आई। उस समय से, विकासशील देशों और पूर्व उपनिवेशों में रहने वाली महिलाएं, जो रंग या विभिन्न जातीयता की हैं या गरीबी में रह रही हैं, ने अतिरिक्त नारीवाद का प्रस्ताव दिया है।

नारीवाद को लेकर विभिन्न समूहों के लोगों की अपनी–अपनी प्रतिक्रिया है, और इसके समर्थकों और आलोचकों में दोनों पुरुष और महिलाएं शामिल हैं। नारी–समर्थक पुरुष समूहों की गतिविधियों में स्कूलों में लड़कों और युवा पुरुषों के साथ हिंसा रोकने जैसे कार्य, कार्यस्थलों में यौन उत्पीड़न कार्यशालाओं की पेशकश करना, सामुदायिक शिक्षा अभियान चलाना और हिंसा में लिप्त पुरुष अपराधियों को काउंसलिंग देना भी शामिल है। प्रो–फेमिनिस्ट पुरुष, पुरुषों के स्वास्थ्य सम्बंधित कार्यक्रम जैसेः पोर्नोग्राफी के खिलाफ सक्रियता, जिसमें पोर्नोग्राफी विरोधी कानून, पुरुषों का अध्ययन और स्कूलों में लिंग इक्विटी पाठ्यक्रम का विकास आदि में भी शामिल होते है। कभी–कभी नारीवादी और महिला संगठन साथ आकर, घरेलू हिंसा और बलात्कार संकट केंद्रों में सहयोग करते है।

नारीवाद सामान्यतया वह विचारधारा और आन्दोलन है जिसका उद्देश्य है जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं को पुरुषों के बराबर स्थान प्राप्त हो। परम्परागत रूप से और समकालीन जीवन में भी महिलाओं को अधीनस्थ और अवपीड़ित स्थिति ही प्राप्त है। नारीवाद का लक्ष्य है इस अधीनस्थ और अवपीड़ित स्थिति को समाप्त कर उन्हें परिवार, समाज, राज्य और समूचे विश्व के स्तर पर पुरुष के समकक्ष स्थान दिलाना। इस प्रकार एक पंक्ति में नारीवाद, नारी समानता (पुरुष से समानता), नारी एकता और नारी सशक्तिकरण का आन्दोलन है। नारीवाद की मांग है कि नारी को अपना हक (समानता का हक), अपने अधिकार और अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व चाहिए। नारीवाद एक विश्वव्यापी आन्दोलन है, कुछ देशों में यह अपने विकास के उच्च स्तर पर है, कुछ देशों में अपेक्षाकृत कम विकसित स्तर पर। सिमोन दिबोवा की प्रसिद्ध पुस्तक The Second Sex में विस्तार में बतलाया गया है कि स्त्री–पुरुष का भेद समाजीकरण का परिणाम है। समाजीकरण (समाज से जुड़े समस्त वातावरण) से उत्पन्न इस स्थिति को दूर कर समान व्यक्तियों के लिए समान अधिकारों की अधिकार के रूप में मांग नारीवाद है।

भारत में नारीवाद, भारतीय महिलाओं के लिए समान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को परिभाषित करने, स्थापित करने, समान अवसर प्रदान करने और उनका बचाव करने के उद्देश्य से आंदोलनों का एक समूह है। संसार भर में अपने नारीवादी समकक्षों की तरह, भारत में भी नारीवादी लैंगिक समानता, समान मजदूरी के लिए काम करने का अधिकार, स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए समान अधिकार और समान राजनीतिक अधिकार चाहते हैं। भारतीय नारीवादियों ने भारत के पितृसत्तात्मक समाज के भीतर संस्कृति–विशिष्ट मुद्दे जैसे कि वंशानुगत कानून और सती जैसी प्रथा के खिलाफ भी लड़ाईयाँ लड़ी है।

भारत में नारीवाद के इतिहास को तीन चरणों में देखा जा सकता हैः पहला चरण, 19वीं शताब्दी के मध्य में शुरू हुआ, जब यूरोपीय उपनिवेशवादी, सती की सामाजिक बुराइयों के खिलाफ बोलने लगे। दूसरा 1915 से, जब भारतीय स्वतंत्रता के लिये गांधी के नेतृत्व भारत छोड़ो आंदोलनों में महिलाओं ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया और कई स्वतंत्र महिला संगठन उभरकर आने लगे। अंत में, तीसरा चरण, स्वतंत्रता के बाद, जहाँ शादी के बाद ससुराल में, कार्यस्थल में और राजनीतिक समानता के अधिकार में महिलाओं के प्रति निष्पक्ष व्यवहार पर ध्यान केंद्रित किया गया है।

भारतीय नारीवादी आंदोलनों द्वारा की गई प्रगति के बावजूद, आधुनिक भारत में रहने वाली महिलाओं को अभी भी भेदभाव के कई मुद्दों का सामना करना पड़ रहा है। भारतीय पितृसत्तात्मक संस्कृति ने भूमि–स्वामित्व के अधिकार प्राप्त करने और शिक्षा तक पहुँच को चुनौतीपूर्ण बना दिया। पिछले दो दशकों में, लिंग–चयनात्मक गर्भपात की प्रवृत्ति को भी ऊभरकर सामने आई। भारतीय नारीवादियों ने इस अन्याय के खिलाफ संघर्ष का रूप देखा जाता है। नारी की स्वतंत्रता,अस्मिता और समता का पक्ष लेने वाला वाद या सिद्धान्त जो पितृसतात्मक समाज व्यवस्था का और राजनीति के विरोधी को ही नारीवाद की संज्ञा दी है। भारत में नारीवादी आंदोलनों की कुछ आलोचना हुई है। विशेष रूप से पहले से ही विशेषाधिकार प्राप्त महिलाओं पर ध्यान केंद्रित करने और गरीब या निम्न जाती की महिलाओं की जरूरतों और प्रतिनिधित्व की उपेक्षा करने के लिए उनकी आलोचना की गई। जिसका परिणाम यह हुआ की कई जाति–विशेष के नारीवादी संगठनों और आंदोलनों का उदय हुआ।

नारीवाद की विशेषताएँ या लक्षण :

1. नारीवाद मैरिज सिस्टम या विवाह संस्कार (एक स्त्री और एक पुरुष के बीच काम सम्बन्धों को मर्यादित करने की व्यवस्था) और परिवार संस्था का विरोधी नहीं है। नारीवाद पुरुष को धिक्कारना नहीं है, पुरुष को अस्वीकार करना नहीं है पुरुष को केवल समानता, पूर्ण समानता के आधार पर स्वीकार करना है। नारीवाद विवाह विरोधी या परिवार विरोधी तो नहीं है, लेकिन इस बात पर अवश्यक ही बल देता है कि विवाह और परिवार नारी के लिए केवल उतनी ही सीमा तक आवश्यक है, जितना सीमा तक यह पुरुष के लिए आवश्यक है।
2. नारीवाद इस बात पर बल देता है कि योग्यता और क्षमता की दृष्टि से, नारी किसी भी पुरुष से कम नहीं है तथा उसे आवश्यक शिक्षा, ज्ञान और प्रशिक्षण प्राप्त कर प्रतियोगी जीवन के सभी क्षेत्रों में पुरुषों के समान स्तर पर कार्य करने का अधिकार होना चाहिए। वह पुरुष से प्रतियोगिता करने की क्षमता रखती है तथा उसे यह अधिकार प्राप्त होना ही है।
3. नारीवाद इस बात पर बल देता है कि राजनीति में नारी को लगभग बराबरी की भागीदारी (कम से कम एक–तिहाई भागीदारी अवश्य ही) प्राप्त होनी चाहिए। महिलाएँ न केवल राजनीति में भाग लेने की योग्यता और क्षमता रखती है वरन् वे इस कार्य के लिए पुरुषों की तुलना में अधिक योग्य और सक्षम हैं। राजनीतिक क्षेत्र में श्रीमति गांधी, श्रीमती भण्डारनायके, माग्रेट थैचर और गोल्डा मायर आदि महिलाओं ने जिस सुयोग्य नेतृत्व का परिचय दिया, उससे यह बात प्रमाणित हो जाती है।
4. नारीवाद इस बात पर बल देता है कि यदि नारी को उत्थान और विकास कि दिशा में आगे बढ़ना है तो यह कार्य नारी एकता और संगठन तथा स्थानीय प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी–नारी सहयोग के आधार पर ही सम्भव है।विभिन्न देशों के अधिकार पत्रों में नारी–पुरुषों के लिये समान अधिकार की बात कही गयी है। संयुक्त राष्ट्र शंघ द्वारा मानवीय अधिकारों का सार्वलौकिक घोषणापत्र स्वीकार किये हुए इतना अधिक समय व्यतीत हो चुका है लेकिन आज तक भी महिला वर्ग के हित और अधिकार सुरक्षित नहीं है। महिला वर्ग की इस गिरी हुई स्थिति के मूल कारण महिलाओं में शिक्षा का अभाव तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता का अभाव है। इसके अतिरिक्त महिलाओं की स्थिति में सुधार के मार्ग में एक प्रमुख बाधक तत्व हैदृसामाजिक कट्टरता, धार्मिक कट्टरता, और अन्धविश्वास।

**भारत में महिला संगठन (Women's Organization in India)**

विगत कुछ वर्षों में स्त्री द्वारा पुरुष के साथ समानता की खोज एक सार्वभौमिक तथ्य बन चुकी है। इस मांग के कारण कुछ नारी संगठनों ने नारियों में चेतना जाग्रत करने और उनकी स्थिति में सुधार लाने की दृष्टि से प्रयत्न किये हैं। मध्यम वर्गीय महिलाओं ने कीमतों में निरन्तर वृद्धि के मुद्दे को उठाया है और घरेलू स्त्रियों ने पुरुषों के साथ समानता की माँग की है। सर्वप्रथम चेन्नई में भारतीय महिला संघ का गठन किया गया। इसके बाद विभिन्न महिला संगठनों के प्रयत्नों से

देश में अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना की गई है। इस संगठन के अलावा विश्वविद्यालय महिला संघ, भारतीय ईसाई महिला मण्डल, अखिल भारतीय स्त्री शिक्षा संस्था एवं कस्तूरबा गाँधी स्मारक ट्रस्ट आदि स्त्री संगठनों ने स्त्रियों की नियोग्यताओं को दूर करने, सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने और स्त्री शिक्षा का प्रसार करने की दृष्टि से कार्य किया है। विश्वव्यापी स्तर पर भी नारियों की स्थिति में सुधार के लिये कुछ प्रयत्न किये गये हैं। नारी संगठनों के प्रयत्नों के परिणामस्वरूप नारियों की स्थिति में सुधार के लिये भारत में कुछ अधिनियम पारित हुए हैं जैसे—हिन्दू विवाह अधिनियम, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, दहेज प्रतिषेध अधिनियम आदि। यही नहीं कुछ अन्य संवेधानिक प्रयत्न भी किये गये हैं जिसमें पंचायत संस्थाओं और नगर पालिकाओं के चुनाव में एक तिहाई पद महिलाओं के लिये आरक्षित किये गये हैं तथा संसद में महिला आरक्षण विधेयक पर बहस निरन्तर जारी है। जिसमें विधानसभा और लोकसभा में एक तिहाई पद महिलाओं के लिये आरक्षित होने की बात कही गई है ताकि महिलायें निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल हों और नीति निर्माण के स्तर पर उनकी सहभागिता रहे। इस प्रकार अधिकारों की दृष्टि से नारी और पुरुष में भेद करना उतना ही अनुचित है जितना लिंग के आधार पर भेदभाव करना। किसी भी सभ्य समाज में स्वतन्त्रता और अधिकार की दृष्टि से महिला और पुरुष में कोई भेद नहीं किया जाता है उन्हें समान अधिकार मिलना चाहिए जो एक सुसंस्कृत सुसभ्य समाज की कसौटी है।

**संदर्भ ग्रंथ**

1. पंचशील शोध – समीक्षा – पृष्ठ 87
2. आजकल : मार्च 2013 – पृष्ठ 24
3. आजकल : मार्च 2011 – पृष्ठ 25
4. पंचशील शोध – समीक्षा – पृष्ठ 61

International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 25-10-2022, Accepted: 11-11-2022, Published: 27-11-2022
Volume 8, Issue 6, 2022, Page No. 44-45

# प्रबंधकाव्यः एक दृष्टि

**डॉ. श्रीमती. के. चन्द्रा**
सहायक आचार्य, एस टी एस एन सरकारी स्नातक महाविद्यालय, कदिरि, श्री सत्य साई जिला, आंध्र प्रदेश, भारत

**सारांश**
प्रबंधकाव्य एक समाख्यान काव्य है। इसमे कथा अपरिहार्य रूप से होती है। प्रबंधकाव्य में कथा के साथ–साथ भावों एवं विचारों की शृंखलबद्ध होना भी आवश्यक है। इसमे सम्पूर्ण समाज एक इकाई के रूप में चित्रित होता है। आचार्य शुक्ल प्रबंधकाव्य के लिए रसात्मकता को अनिवार्य मानते है। किसी विषय या कथा का गद्य या पद्य में प्रस्तुतीकरण प्रबंध कहलाता था।

**मूल शब्दः** रसात्मकता, श्रुखलाबद्ध

## प्रस्तावना

भारतीय आचार्यों ने काव्य के श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य नामक दो भेद बतलाए हैं। उनके अनुसार श्रव्यकाव्य के तीन भेद है – गद्य, गद्य और चंपू । छंदरहित रचना गद्य, छंदोबद्ध रचना पद्य और गद्य–पद्य मिश्रित चंपू कहलाती है । पद्य के भी दो प्रकार हैं – प्रबंधकाव्य और मुक्तक काव्य ।प्रबंधकाव्य में छंद परस्पर सापेक्ष होते हैं और मुक्तक काव्य में पूर्वापर संबंध नहीं होता । आचार्य विश्वनाथ ने इन दोनों का लक्षण निर्धारित करते हुए लिखा है –

"छंदोवद्धपदम पद्यम तेन मुक्तेन मुक्तकम।"

यहाँ प्रबंधकाव्य ही वर्ण्य है । अतः उस पर ही विचार किया जाएगा । भारतीय आचार्यों में कुंतक ने प्रबंधकाव्य को महाकवियों का कृतिकन्द बताया है – " प्रबंधेषू कवीन्द्राणाम कीर्ति केन्देशु कि पुनः ।" यह मुक्तक से श्रेष्ठ माना गया है। प्रबंधकाव्य की चर्चा करते हुए डॉ॰ गायत्री जोशी ने लिखा है – " संस्कृत में 'प्रबंध' शब्द का मूल अर्थ (प्र+बन्ध) (बांधना +अय) संदर्भ या ग्रंथ रचना है । आधार (कथा–विषय) पर कल्पना से ग्रंथ रचना करना भी प्रबंध कहा जाता था। दूसरे शब्दों में परंपरानुमोदन के साथ किसी विषय या कथा का गद्य या पद्य में प्रस्तुतीकरण प्रबंध कहलाता था । धीरे धृधीरे यह शब्द आख्यान या कथा के सम्यक तारतम्य पर आधारित केवल काव्य के लिए प्रयुक्त होने लगा और प्रबंधकाव्य के लिए रुद हो गया।"[2] डॉ॰ भगीरथ मिश्र ने प्रबंधकाव्य के लिए काव्यात्मकता कथा और छंदों की क्रमबद्धता को अपरिहार्य माना है – "यह पद्य रचना है जिसके अंतर्गत छंद किसी कथा सूत्रता कि व्यवस्था से पिरोये रहते हैं उनके छंदों के क्रम को बदला नहीं जा सकता।"
डॉ॰ नगेन्द्र लिखते हैं – "प्रबंध में जीवन का सवांग विस्तार तथा संपूर्ण अभिव्यक्ति रहती है, इसीलिए आनंद के अतिरिक्त काव्य के महत्वपूर्ण उद्देश्य पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति का साधन प्रबंधकाव्य ही अधिक है ।"[4]
इन कथनों के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्रबंधकाव्यमें निम्नलिखित चार तत्वों का होना आवश्यक है––– कथात्मकता, काव्यात्मकता ,वस्तुवर्णन और चरित्र–चित्रण।

**क) कथात्मकताः** प्रबंधकाव्यएक समाख्यान काव्य है । इसमे कथा अपरिहार्य रूप से होती है । आचार्य भामह ने इसे निबद्ध काव्य कहा है । प्रबंधकाव्य में कथा के साथ–साथ भावों एवं विचारो कि शृंखलबद्ध होना भी आवश्यक है। इसमें संपूर्ण समाज एक इकाई के रूप में चित्रित होता है । यही कारण है कि कभी–कभी किसी प्रबंधकाव्य में जीवन–वृत्त के स्थान पर संपूर्ण जाति या समाज का ही चित्रण होता है।

**ख) काव्यात्मकताः** प्रबंधकाव्य एक काव्य है इसे पद्यात्मक कथाकाव्य भी कहा जाता है। पद्य इसकी पहली शर्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है –––" प्रबंधकाव्य में मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है । इसमें घटनाओं कि संबंध–श्रंखला और स्वाभाविक क्रम के ठीक–ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करनेवाले, नानाभावों का रसात्मक अनुभव करने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए । इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं किया जा सकता।"[5] इस प्रकार आचार्य शुक्ल प्रबंधकाव्य के लिए रसात्मकता को अनिवार्य मानते हैं । यह रसानुभूति कविता के माध्यम से ही कराई जाती है।

**ग) वस्तुवर्णनः** यह बाह्यरार्थ निरूपक है। इसमें इतिवृत्त का वर्णन होता है एल प्रबन्धकाव्य की विकासयात्रा में अब यह अंतर आया है कि भाव एवम विचार प्रधान प्रबंध काव्यों की रचना होने लगी है।

**घ) चरित्र–चित्रणः** इतिवृत का विकास चरित्रों को आधार बनाकर ही होता है अतः प्रबंध काव्य में चरित्रों का पूर्ण विकास होना चाहिए। पंडित रामदहिं मिश्र ने इन सबको समेकित करते हुए लिखा है –––"प्रबंध प्रकृष्टतः विस्तार का द्योतक है। प्रबन्धकाव्य जीए पद्य, प्रबंधगत कथा वर्णन के अधीन तथा परस्पर संबद्ध रहते हैं। वे सम्बद्ध रूप से अपने विषय का ज्ञान करते, भावमग्र करते एवम रस में सरोबार करते हैं।"[6]
प्रबंधकाव्य का विभाजन करते हुए आचार्यों ने इसे दो प्रधान भेद बताए हैं ––– ' महाकाव्य और खंडकाव्य ।' इनकी विशेषताओं पर आगे विचार किया जाएगा।

## महाकाव्य

किसी विदा की परिभाषा देकर इसका यथावत लक्षण निर्धारित करना कठिन कार्य है फिर भी पहचान के लिए उसका स्वरूप–निर्धारण आवश्यक हो जाता है। महाकाव्य साहित्यिक विधा रही है अतः इसका सर्वकालिक लक्षण निर्धारित करना संभव नहीं है। यह युगीन चेतना को आत्मसात कर चलनेवाली एक प्रगतिशील विधा है। महाकाव्य एक सांस्कृतिक प्रयास है। संस्कृति जिस प्रकार अखंड रहकर भी युगीन विशेषताओं को आत्मसात करती चलती रहती है,उसी प्रकार महाकाव्य भी अपने मूल उद्देश्य को संरक्षित रखते हुए युगीन प्रवृत्तियों को प्रश्रय देते हुए

गतिशील रहता है। यह जातीय जीवन की अभिव्यक्ति का माध्यम है। दिनकर ने लिखा है ———"विश्व के महाकाव्य मनुष्यता के प्रगति के मार्ग में मील – पत्थरों के समान होते है। वे व्यंजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहां तक प्रगति कर सका है।" महाकाव्य की इन विशेषताओं को देखते हुए इसके लिए कोई रूढ़ परिभाषा निर्धारित करना संभव नहीं है। इन सीमाओं के होते हुए भी भारतीय एवम पाश्चात्य विद्वानों ने महाकाव्य की परिभाषा निर्धारित करने का प्रयास किया है। यहां भारतीय और पाश्चात्य दोनों परंपराओं में विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं का विश्लेषण किया जाएगा। भारतीय साहित्य में संस्कृत के आचार्यों ने इस पर गंभीरता से सूक्ष्म विचार किया है। यहां भारतीय आचार्यो से तात्पर्य संस्कृत आचार्यों से है। अतः यहां विश्लेषण के क्रम में संस्कृत आचार्यों की परिभाषाओं पर विचार किया जाएगा।

## संस्कृत आचार्यों की परिभाषाएं

संस्कृत आचार्यों में भामह प्रतिष्ठित आचार्य माने जाते हैं। उनके अनुसार "सर्गविभाजन से महाकाव्य में व्यवस्था आती है। नाटकीय संधियों एवम कार्यवस्थाओ के प्रयोग के द्वारा कथानक के विकास में क्रामबद्धता एवम काव्यात्मकता आती है। वर्णनात्मकता काव्य के लिए अनिवार्य है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि चतुर्वर्ग फल प्राप्ति का विधान होना चाहिए। उससे नायक का अभ्युदय होता है,किंतु अन्य पात्रों का उत्सर्ग दिखाने के लिए नायक का वध नहीं किया जाता है।"[8] इस प्रकार 'भामह ' ने अपनी परिभाषा में महाकाव्य को उसकी संपूर्णता में समेटने का प्रयत्न किया है। आचार्य दंडी ने महाकाव्य के लक्षणों का निरूपण करते समय भामह की बातों को परिभाषा में आत्मसात किया ही है उसके बाह्य स्वरूप का विवेचन किया है।[9] परवर्ती आचार्यों के लिए दंडी की परिभाषा अनुकरणीय रही है। रुद्रट [10] एवम हेमचंद्र [11] जैसे आचार्यों ने भी अपने लक्षणों का पूर्ववर्ती आचार्यों के परिभाषाओं का आधार बनाया है। रूद्रट ने महाकाव्य के लिए महत उद्देश्य,महत चरित, महती घटना और समग्र जीवन के रसात्मक चित्रण को अनिवार्य माना है। कविराज विश्वनाथ [12] ने अपेक्षाकृत व्यापक और स्पष्ट परिभाषा दी है। उनकी परिभाषा में पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के लक्षणों का समाहार है।

विश्वनाथ की परिभाषा सर्वमान्य और सर्वांगपूर्ण है। इस परिभाषा में महाकाव्य के लिए निम्नलिखित तत्व आवश्यक बताए गए हैं –

1. कथानक् की ऐतिहासिकता
2. कथावस्तु का सर्गों में विभाजन
3. नाटकीय संधियों का निर्वाह
4. धीरोदात्त उच्च कुलीन नायक
5. श्रृंगार, वीर और शांत रसों में एक की परिपक्वता और अन्य रसों का सहायक होना ।
6. धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चतुर्वर्ग की प्राप्ति
7. आठ से अधिकसर्गों की संख्या
8. सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन
9. महाकाव्य के आरंभ में नमस्कार, मंगलाचरण, आशीर्वचन आदि का विधान
10. सज्जन की स्तुति एवम दुर्जन की निंदा
11. सूर्य, प्रातः, मध्याह्न, संध्या, रजनी, प्रदोष, पर्वत, सागर, स्वर्ग, पुर, ऋतु, संयोग श्रृंगार, विप्रलंभ श्रृंगार, पुत्रोत्पत्ति, यात्रा, मंत्रणा, यज्ञ आदि का सांगोपांग चित्रण।
12. कवि, कथा अथवा नायक पर आधारित महाकाव्य का नामकरण।
13. कथा के आधार पर सर्गों का नामकरण।

इस प्रकार विश्वनाथ ने महाकाव्य की एक व्यापक परिभाषा दी है, किंतु यह परिभाषा मौलिक नहीं है इन्होंने पूर्ववर्ती आचार्यों का दोहन किया है, किंतु व्यापकता के कारण इनकी परिभाषा समादृत रही है। अनेक कवियों ने उनकी परिभाषा को आधार बनाकर काव्य रचना की और प्रतिष्ठा अर्जित की। इससे यह परिभाषा यशस्वी हुई।

## संदर्भ सूची


1. आचार्य विश्वनाथ–साहित्य दर्पण
2. डॉ. गायत्री जोशी – हिंदी प्रबंधों में जीवन दर्शन, 4
3. डॉ. भागीरथ मिश्र – काव्यशास्त्र, 48
4. डॉ. नागेंद्र – भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका, 240
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल – जायसी ग्रंथावली, 68